बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 87

आंकड़ों की विश्वसनीयता

बताया जाता है कि सरकार ने पिछले साल राष्ट्रीय आधिकारिक सांख्यिकी नीति में रखे गए प्रस्ताव के मुताबिक राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) तथा केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (सीएसओ) के विलय का निर्णय ले लिया है। दोनों ही विभाग केंद्रीय सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय के अधीन आते हैं। एक नया राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन गठित किया जाएगा और राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग के सचिव के रूप में मुख्य सांख्यिकीविद की भूमिका समाप्त की जाएगी। नए सांख्यिकी संगठन (एनएसओ) की अध्यक्षता सांख्यिकी मंत्रालय के सचिव के पास होगी।

इस मौके पर सांख्यिकी से जुड़े विभागों का पुनर्गठन खास महत्त्व रखता है। अतीत में इस पर करीबी नजर नहीं थी और इसे केवल अफसरशाही के फेरबदल या प्रशासनिक परिवर्तन के रूप में देखा गया। परंतु हालिया घटनाएं बताती हैं कि इस प्रक्रिया पर बारीक नजर रखनी होगी क्योंकि आधिकारिक तौर पर आंकड़े जुटाने और उन्हें मंजूरी दिलाने का यही एक तरीका है। वहीं दूसरी ओर यह केंद्र सरकार की सांख्यिकी मशीनरी में बेहतर तालमेल लाने वाला भी बन सकता है। आधिकारिक सांख्यिकी आंकड़े अब कहीं अधिक तेज गति से आ सकते हैं और पूरी व्यवस्था कितने किफायती ढंग से काम कर रही है इसका आकलन किया जा सकता है। सरकारी अधिकारियों की दलील है कि मौजूदा व्यवस्था ऐसी है जिसकी बदौलत दोहराव और प्रचुरता हो रही है। उनका कहना है कि अफसरशाही को सुसंगत बनाकर, उनका विलय करके और उन्हें एक नेतृत्व के अधीन लाकर काम को बेहतर ढंग से अंजाम दिया जा सकता है। एक सामान्य सिद्धांत के रूप में देखें तो केंद्र सरकार की समूची अफसरशाही में ऐसे बदलाव की आवश्यकता है। इसमें दो राय नहीं है कि प्रशासनिक सुधार हमेशा क्षमता को बेहतर बनाने की दिशा में होना चाहिए।

परंतु भारत सरकार की सांख्यिकी मशीनरी का मामला अपने आप में विशिष्ट है। मौजूदा हालात में इसकी संवेदनशीलता और अधिक बढ़ जाती है। डेटा तैयार करने की प्रक्रिया की स्वायत्तता को लेकर तमाम सवाल पूछे जाते रहे हैं। इनकी शुरुआत सकल घरेलू उत्पाद और आर्थिक वृद्धि के आंकड़ों से हुई लेकिन ये वहीं तक सीमित नहीं हैं। सकल घरेलू उत्पाद के आंकड़ों की नई शृंखला से जुड़े सवालों का जवाब देने के क्रम में गत वर्ष एक बैक सीरीज की घोषणा की गई थी लेकिन इससे उन आंकड़ों की गुणवत्ता को लेकर संदेह और अधिक गहरा हो गया। इन आंकड़ों में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के कार्यकाल के आंकड़ों को घटा दिया गया और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के आंकड़ों को बढ़ा दिया गया।

ये चर्चाएं उस समय सार्वजनिक होकर जोर पकड़ने लगीं जब वरिष्ठ सांख्यिकीविदों ने इस बात को लेकर त्यागपत्र दे दिया कि सरकार एनएसएसओ के रोजगार संबंधी आंकड़े जारी करने में विफल रही है। ये आंकड़े बता रहे थे कि बेरोजगारी 45 वर्ष के उच्चतम स्तर पर पहुंच चुकी है। इन बातों के बीच कुछ लोगों की चिंता थी कि सरकार आधिकारिक आंकड़ों में हस्तक्षेप तो नहीं कर रही है। भारत में इससे पहले इसे लेकर ऐसी कोई समस्या पैदा नहीं हुई थी। कुछ सप्ताह पहले एनएसएसओ की एक अन्य रिपोर्ट ने दिखाया कि एमसीए 21 के डेटाबेस में काफी कंपनियां तलाशी नहीं जा रही हैं। वे बंद हो गई हैं अथवा अन्य क्षेत्रों में कारोबार कर रही हैं। ऐसे में यह स्पष्ट है कि सांख्यिकी को सुसंगत बनाने के बजाय विश्वसनीयता बहाल करने, पारदर्शिता लाने और स्वायत्तता सुनिश्चित करने पर जोर होना चाहिए। खेद की बात है कि मंत्रालय के सचिव के अधीन एक नया और एकीकृत संगठन इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगा। पर्यवेक्षक इसे डेटा की विश्वसनीयता में सुधार का संकेत नहीं मानेंगे। उनकी विश्वसनीयता को लेकर सवाल बढ़ते जाएंगे।

विनय सिन्हा

दरों में कटौती और गवर्नर की भूमिका

आरबीआई ने फरवरी और अप्रैल में दो बार दरों में कटौती की लेकिन यह सरकार के लिए कोई चुनावी तोहफा नहीं था। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं **सौम्यकांति घोष**

कई बार टिप्पणियां अवांछित भी होती हैं। वे विषय की संकीर्ण समझ से ताल्लुक रखती हैं। द इकनॉमिस्ट पत्रिका के 13 अप्रैल के अंक में भी ऐसी ही एक टिप्पणी है। इस टिप्पणी में कहा गया है कि भारत सरकार ने केंद्रीय बैंक के एक सक्षम प्रमुख को हटाकर एक ऐसे व्यक्ति को पद पर बिठा दिया जो आसानी से वश में आ जाता है और जिसने चुनाव से पहले दरों में कटौती की। ऐसे वक्तव्य हकीकत से दूर होते हैं।

जैसा कि हम सभी जानते हैं भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने फरवरी और अप्रैल में दरों में कटौती की थी। दोनों कटौतियां अनुकूल वृहद आर्थिक स्थिति के चलते की गई थीं। मुद्रास्फीति नरम थी और वृद्धि में गिरावट को लेकर चिंता बढ़ रही थी। जाहिर है ऐसा किसी नरम मिजाज गवर्नर की वजह से नहीं हुआ था। इन कदमों ने मौद्रिक नीति समिति की सक्रियता भरी निर्णय प्रक्रिया को दर्शाया। गवर्नर इस समिति के एक सदस्य हैं और इन निर्णयों का चुनावों से कोई संबंध नहीं।

आंकड़ों के मुताबिक वित्त वर्ष 2019 में औसत खुदरा महंगाई 3.4 फीसदी और ग्रामीण क्षेत्रों में यह केवल 3 फीसदी रही। इस अवधि में औसत खाद्य महंगाई 0.7 फीसदी रही और सब्जियों की कीमत 4.4 फीसदी कम हुई। पिछली बार मुद्रास्फीति के आंकड़े जनवरी 2018 में 5 फीसदी से ऊपर गए थे। वित्त वर्ष 2019 में औसत मूल खुदरा महंगाई 5.8 फीसदी रही। आरबीआई ने मुद्रास्फीति के दबाव के चलते जून और अगस्त 2018 में दरों में इजाफा किया। अगर हम मुद्रास्फीति के आंकड़ों को देखें तो दरों में कटौती का निर्णय पूरी तरह डेटा आधारित था। बल्कि बाजार का एक रुख यह भी है कि चूंकि मुद्रास्फीति में निरंतर कमी आ रही है इसलिए दरें मौजूदा स्तर से भी कम रह सकती थीं।

हमारे लिए भारत के संदर्भ में केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता का मुद्दा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। परंतु इकनॉमिस्ट में यह जितने पूर्वग्रह पूर्ण ढंग से सामने आया है, वैसा भी नहीं है।

केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता मोटे तौर पर तीन चीजों से संबंधित है: पहला व्यक्तिगत मामले, दूसरा वित्तीय पहलू और तीसरा नीतिगत आचरण। व्यक्तिगत स्वतंत्रता इस बात से संबंधित है कि सरकार केंद्रीय बैंक के शीर्ष अधिकारियों और संचालन बोर्ड की नियुक्तियों, उनके कार्यकाल और अन्य प्रक्रियाओं से खुद को कितना दूर रखती है। इतना ही नहीं केंद्रीय बैंक के संचालन बोर्ड में सरकार के प्रतिनिधित्व की प्रकृति और उसके दखल की सीमा भी इसी से संबंधित है।

वित्तीय स्वतंत्रता का संबंध केंद्रीय बैंक की इस स्वायत्तता से है कि वह केंद्रीय बैंक के ऋण से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सरकारी व्यय की भरपाई की सीमा का निर्धारण कर सके। केंद्रीय बैंक के ऋण तक सरकार की सीधी पहुंच का सीधा अर्थ यही होगा कि मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति की अधीनस्थ है।

केंद्रीय बैंक की नीतिगत स्वायत्तता का अर्थ लक्ष्य की स्वायत्तता और उपायों की स्वायत्तता है। लक्ष्य की स्वायत्तता वह स्थिति है जब केंद्रीय बैंक उत्पादन या कीमतों को स्थिर बनाने के लिए खुद नीतिगत प्राथमिकताओं का चयन करता है और मौद्रिक नीति का लक्ष्य निर्धारित करता है। उपायों की स्वायत्तता में कहा गया है कि केंद्रीय बैंक सरकार द्वारा तय लक्ष्य को हासिल करने के लिए ब्याज दर तथा अन्य उपाय अपना सके।

भारतीय संदर्भ में इन मुद्दों पर चर्चा करते हैं। आरबीआई की लंबा और विस्तृत इतिहास रहा है। अब तक के कुल गवर्नरों में से 66 फीसदी भारतीय प्रशासनिक सेवा से चुने गए हैं। आईएएस से चुने जाने वाले अतीत के कुछ गवर्नरों ने अपने इर्दगिर्द ऐसी छवि बनाई जो आज भी बरकरार है। स्पष्ट है कि किसी भी संस्थान को चलाने के लिए जमीनी हकीकतों की समझ होना आवश्यक है। यही वजह है कि ये नियुक्तियां प्राय: स्वामित्त्व निरपेक्ष रही हैं।

भारत की बात करें तो आरबीआई के पास लक्ष्य की स्वायत्तता मुद्रास्फीति के निर्धारण के रूप में है। मुद्रास्फीति का स्तर वित्त मंत्रालय द्वारा निर्धारित किया जाता है जो वह आरबीआई से मिली जानकारी के आधार पर निर्धारित करता है। आरबीआई के पास रीपो दर के रूप में उपाय या उपकरण की स्वायत्तता भी है। मौद्रिक नीति समिति इसका निर्धारण मतदान के आधार पर करती है। वैश्विक स्तर पर देखें तो अमेरिका के फेडरल रिजर्व और यूरोपीय केंद्रीय बैंक समेत अधिकांश केंद्रीय बैंकों को उपाय की पूरी स्वायत्तता है लेकिन लक्ष्य की नहीं। आरबीआई शायद इकलौता ऐसा केंद्रीय बैंक है जिसके पास दोनों हैं।

तीसर बिंदु की बात करें तो यह सच है कि भारतीय संदर्भ में राजकोषीय नीति मौद्रिक नीति पर हावी रही है। बहरहाल सन 1998 में आरबीआई ने सरकार के घाटे की भरपाई के लिए नकदी छापना रोक दिया। तब से आरबीआई ने सरकारी प्रतिभूतियों की नीलामी में हिस्सा लेना भी बंद कर दिया। बहरहाल, ईमानदारी से कहा जाए तो हमारे देश में राजकोषीय नीति की विश्वसनीयता पर भी सवालिया निशान हैं।

सन 2008 के वित्तीय संकट के बाद से केंद्रीय बैंकिंग में तब्दीली आई है। आसान मौद्रिक नीति और निरंतर कम ब्याज दर ने परिसंपत्ति कीमतों में इजाफा किया है। इससे अमीर और अधिक अमीर हुए हैं तथा बचत पर प्रतिफल कम हुआ है। इसका असर पेंशन पाने वालों और उन परिवारों पर हुआ है जो अमीर तो नहीं हैं लेकिन अपने बैंक जमा पर मिलने वाले ब्याज की आय पर निर्भर हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि राजनीतिक कारणों ने केंद्रीय बैंकिंग में अहम भूमिका निभाई है।

दिलचस्प बात यह है कि केंद्रीय बैंक की स्वायत्तता की आलोचना करने वाले अक्सर यह दलील देते हैं कि एक स्वतंत्र केंद्रीय बैंक के पास लोकतांत्रिक वैधता नहीं होती। परंतु ऐसे आलोचकों को नोबेल पुरस्कार विजेता मिल्टन फ्रीडमेन के वक्तव्य से बढ़ावा मिलता है। उन्होंने कहा था कि पैसा इतना महत्त्वपूर्ण मुद्दा है कि उसे केवल केंद्रीय बैंक के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है। इस लिहाज से देखा जाए तो अगर आरबीआई और सरकार मशविरे की प्रक्रिया के साथ सुसंगत तरीके से आगे बढ़ें तो कोई पहाड़ नहीं टूट पड़ेगा। आखिरकार, आरबीआई अधिनियम की संशोधित भूमिका में वृद्धि का जिक्र मुद्रास्फीति के साथ किया गया है।

जून में कमजोर वृद्धि और मुद्रास्फीति के बीच दरों में कटौती का शोर था। प्रश्न यह है कि क्या अब आगे होने वाली किसी कटौती को द इकनॉमिस्ट नई सरकार को चुनावी तोहफा करार देगी? यह जानना दिलचस्प रहेगा।

(लेखक एसबीआई के समूह मुख्य आर्थिक सलाहकार हैं।)

नई सरकार में पूरक मंत्रालयों और विभागों का होगा विलय?

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

पूरक मंत्रालयों एवं विभागों के विलय के बारे में भाजपा घोषणापत्र में किए गए वादे को पूरा करने में मोदी सरकार की प्रतिबद्धता का पता 30 मई को साफ तौर पर चल जाएगा

इस सप्ताह के अंत में नरेंद्र मोदी की अगुआई में नई सरकार शपथ ले लेगी। इसे लेकर मंत्रिपरिषद में शामिल होने वाले नामों को लेकर अटकलों का बाजार गर्म है। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के कई नेताओं की किस्मत इससे तय हो सकती है। लेकिन यह सवाल भी खड़ा होता है कि नई सरकार का संभावित आकार क्या हो सकता है?

भाजपा ने मतदान की प्रक्रिया शुरू होने के थोड़ा पहले अपना चुनाव घोषणापत्र जारी किया था। उस घोषणापत्र में यह वादा भी शामिल था, 'नीतियों के बेहतर क्रियान्वयन और समन्वय को सुनिश्चित करने के लिए हम एक ही तरह के कार्यों में संलग्न विभागों को क्षेत्रीय मंत्रालयों में मिला देंगे। इससे नीति-निर्माताओं को सर्वांगीण एवं समग्र नीतियां बनाने के साथ ही उनके बेहतर क्रियान्वयन में भी सहूलियत होगी।' वह वादा काफी हद तक स्पष्ट है। अगर इस वादे को पूरा किया जाना है तो सरकार के कार्यकाल की शुरुआत में ही कदम उठाए जा सकते हैं। अगर मंत्री शपथ लेते हैं और उसी समय पूरक विभागों को बड़े संभागीय मंत्रालयों में मिलाने का फैसला नहीं लिया जाता है तो इस वादे के बाद में पूरा हो पाने की संभावना कम ही रहेगी। जब कोई अपने मंत्रालय का कार्यभार संभाल लेता है तो उस मंत्रालय का आकार एवं दायित्व छोटा करना मुश्किल हो जाता है। उस समय प्रशासनिक सुधार एवं मंत्रालयों के पुनर्गठन की जरूरत पर क्षेत्राधिकार संबंधी दुर्गम मसले भारी पड़ने लगते हैं।

पूरक कार्यों को अंजाम देने वाले विभागों का उस क्षेत्र से संबंधित मंत्रालयों में विलय करना कोई नया विचार नहीं है लेकिन अपने राजनीतिक पहलू के चलते इसे लागू कर पाना खासा मुश्किल है। राजीव गांधी ने परिवहन से संबंधित सभी मंत्रालयों को एक साथ मिला दिया था। इस तरह जहाजरानी, रेलवे, नागरिक उड्डयन और सड़क परिवहन एक व्यापक परिवहन मंत्रालय के मातहत विभाग बन गए। लेकिन राजीव सरकार का वह प्रयोग अधिक देर तक नहीं चला। इसकी एक वजह तो तत्कालीन प्रधानमंत्री की तरफ से प्रतिबद्धता की कमी और दूसरी वजह बड़े मंत्रालय में राजनीतिक सत्ता से जुड़ी समस्याएं थीं।

सवाल यह है कि हाल के चुनाव में बड़ी जीत के बाद सत्ता में लौट रहे प्रधानमंत्री मोदी क्या लोगों से किए गए भाजपा के इस वादे को पूरा कर सकते हैं? क्या रेलवे, नागरिक उड्डयन, सड़क, राजमार्ग और जहाजरानी मंत्रालयों को एक विशाल परिवहन मंत्रालय में समाहित किया जा सकता है? केवल परिवहन मंत्रालय के ही बारे में ऐसी चर्चा क्यों हो? ऊर्जा क्षेत्र में भी पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, बिजली एवं नवीकरणीय ऊर्जा को मिलाकर एक समेकित मंत्रालय क्यों नहीं बनाया जाना चाहिए?

इसी तरह उद्योग जगत से संबंधित कामकाज देखने के लिए करीब आधे दर्जन मंत्रालय क्यों होने चाहिए? उद्योग मंत्रालय के अलावा भारी उद्योग एवं लोक उपक्रम के लिए अलग मंत्रालय, सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम इकाइयों के लिए अलग मंत्रालय, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए अलग मंत्रालय, रसायन एवं उर्वरक के लिए अलग मंत्रालय, कपड़ा के लिए अलग मंत्रालय और इस्पात के लिए अलग मंत्रालय है। उद्योग संबंधित गतिविधियों के लिए एक समेकित मंत्रालय बनाकर इन सभी को उनका विभाग बना देने से उद्योग जगत में नई जान फूंकने के लिए सरकारी प्रयासों में एकरूपता आएगी।

इसी तरह, खनन क्षेत्र के लिए दो मंत्रालय क्यों होने चाहिए? कोयला के लिए अलग और खनन के लिए अलग मंत्रालय। इन्हें एक मंत्रालय में समाहित कर उन्हें दो अलग विभागों के रूप में रखा जा सकता है। भाजपा के घोषणापत्र में पानी के लिए भी एक समेकित मंत्रालय बनाने का वादा किया गया है।

इसके मुताबिक 'जल प्रबंधन गतिविधियों को संपूर्णतावादी तरीके से देखने पर ही बेहतर समन्वय एवं प्रयास सुनिश्चित किए जा सकते हैं।' पानी के लिए प्रस्तावित नए मंत्रालय में पेयजल एवं स्वच्छता और जल संसाधन, नदी विकास एवं गंगा पुनरुद्धार मंत्रालयों के कार्यों को समाहित किया जा सकता है। मोदी के लिए चुनौती यह है कि संबद्ध गतिविधियों वाले विभागों एवं मंत्रालयों को मिला देने से केंद्रीय मंत्रिमंडल और उसमें शामिल मंत्रियों की संख्या में कटौती हो जाएगी। ऐसा नहीं है कि ऐसी कोशिश पहले नहीं की गई हैं। वर्ष 2014 में सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्रालय और जहाजरानी मंत्रालय को एक ही मंत्री नितिन गडकरी के मातहत ला दिया गया था। लेकिन वह आधे मन से की गई कोशिश थी क्योंकि परिवहन से संबंधित अन्य मंत्रालयों- नागरिक उड्डयन और रेलवे को अलग ही रखा गया। अगर सरकार को अधिक असरदार एवं दुबला बनना है तो उसे पहले कदम के तौर पर कम संख्या में कैबिनेट मंत्री एवं स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए। कुल मंत्रियों की संख्या घटने से पूरक कार्यों वाले मंत्रालयों एवं विभागों का विलय जरूरी हो जाएगा।

फिलहाल केंद्र सरकार में 25 कैबिनेट मंत्री और 11 राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) के अलावा 34 राज्य मंत्री भी हैं। प्रधानमंत्री मोदी को जोड़ते हुए मंत्रिपरिषद की कुल संख्या 71 तक हो जाती है।

पूरक मंत्रालयों एवं विभागों के विलय के बारे में भाजपा घोषणापत्र में किए गए वादे को पूरा करने में मोदी सरकार की प्रतिबद्धता का पता 30 मई को साफ तौर पर चल जाएगा। अगर उस दिन घोषित मंत्रालयों का ढांचा लगभग अपरिवर्तित ही रहता है तो इस बात की संभावना कम ही रह जाएगी कि बाद में ऐसे व्यापक बदलाव लागू हो पाएंगे।

कानाफूसी

नेता प्रतिपक्ष का पद?

नई लोकसभा में कांग्रेस को 52 सीट मिली हैं। इसका अर्थ यह है कि पार्टी का कोई भी नेता, नेता प्रतिपक्ष का पद प्राप्त करने के लिए पात्रता नहीं रखता है। यह दर्जा मुख्य विपक्षी दल के सदन के नेता को दिया जाता है लेकिन इसके लिए जरूरी है कि उस दल को 543 सदस्यों वाली लोकसभा में कम से कम 10 फीसदी सीटें हासिल हों। कांग्रेस की दो सीटें कम हैं। कांग्रेस का एक धड़ा मानता है कि अब वक्त आ गया है कि शरद पवार के नेतृत्व वाली राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी का कांग्रेस में विलय कर लिया जाए। इस धड़े का मानना है कि इससे दो हित सधेंगे। एक तो यह कि राकांपा के पांच सदस्यों की बदौलत कांग्रेस के कुल 57 सांसद हो जाएंगे और पार्टी को नेता प्रतिपक्ष का पद मिल जाएगा। इससे दोनों दलों को सितंबर-अक्टूबर में महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव की तैयारी का वक्त भी मिल जाएगा। हालांकि सूत्र के मुताबिक राकांपा की ऐसी कोई तैयारी नहीं है।

नए उम्मीदवारों की जुगत

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी बीते कुछ दिनों से लगातार सफर पर हैं। ऐसे में उनके साथ संपर्क कर पाना आसान नहीं रह गया है। ऐसे में मंत्री पद की उम्मीद करने वाले नेता अब उनकी पिछली कैबिनेट के वरिष्ठ सदस्यों से संपर्क कर रहे हैं। चूंकि सुषमा स्वराज और अरुण जेटली आम तौर पर किसी से मुलाकात के लिए उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए ये उम्मीदवार राजनाथ सिंह, नितिन गडकरी, जेपी नड्डा और थावरचंद गहलोत के निवास पर जा रहे हैं। इस बात पर आम सहमति है कि इन पुराने मंत्रियों को कैबिनेट में जरूर जगह मिलेगी। नए लोगों का मानना है कि इन पुराने दिग्गजों की प्रधानमंत्री या पार्टी अध्यक्ष अमित शाह से इस विषय पर चर्चा हो सकती है।

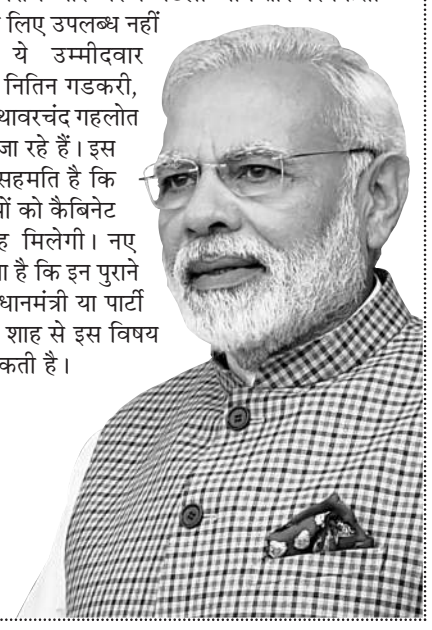

आपका पक्ष

जीन संवर्धित फसलों का उपयोग

भारत में जीन संवर्धित फसलों का शुरू से ही विरोध होता रहा है। विशेषज्ञों द्वारा इसके पक्ष और विपक्ष में कई तर्क भी दिए जाते रहे हैं, लेकिन इस बात से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि इसकी उपयोगिता फसलों की उत्पादकता और सूखे की मार से निपटने में सहायक है। वर्ष 1996 के बाद से अब तक आनुवांशिक फसलों की खेती में 100 गुना से ज्यादा का इजाफा हो चुका है। एक रिपोर्ट के अनुसार आज लगभग 35 से अधिक देशों में इसकी खेती हो रही है। वर्ष 2002 में भारत में बीटी कपास की खेती की अनुमति के बाद 2002-03 में इसकी उत्पादकता लगभग 191 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी, जो अब लगभग 513 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से अधिक हो चुकी है। इसकी बदौलत भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा कपास निर्यातक देश बनकर उभरा है। आज अमेरिका और चीन के बाद कपास का सबसे ज्यादा

उत्पादन भारत में होता है। देश में जनसंख्या वृद्धि के साथ खाद्य सुरक्षा के मद्देनजर जीन संवर्धित फसलों की खेती समय की मांग है। अमेरिका में आनुवांशिक तरीके से फसलों में मक्का, सोयाबीन और कपास से लेकर पपीता जैसी कई और फसलों की खेती सफलतापूर्वक की जा रही है। चीन भी इस दिशा में काफी अग्रसर हो

जीन संवर्धित फसलों की खेती करके खाद्य संकट से निजात पाई जा सकती है

चुका है। हालांकि इस बात से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि जीन संवर्धित फसलों के बीज (जीएम बीज) काफी महंगे होते हैं, जिससे यह आम किसान की पहुंच से काफी दूर होते हैं। वैज्ञानिक परीक्षण के बाद इनकी प्रजनन क्षमता भी खत्म हो जाती है जिससे इन जीन संवर्धित फसलों को पुन: बीज के रूप में उपयोग करना भी संभव नहीं है। आज भी भारत कृषि पर ही निर्भर है। देश और विदेश के कई वैज्ञानिकों का इस तकनीक पर सहमति और दुनिया के कई देशों में इस तकनीक के उपयोग से यह साफ जाहिर है कि जनसंख्या और कृषि के वर्तमान स्थिति के हिसाब से यह जीन संवर्धित बीटी फसल की कृषि तकनीक किसानों के लिए कितनी आवश्यक है। देश में ऐसी फसलों को विकसित करने तथा देश के कृषि, खाद्यान्न और पोषण सुरक्षा के लिए इस पर गौर करने की जरूरत है। सरकार द्वारा इस दिशा में जरूरी कदम उठाने तथा आम किसानों तक इसकी पहुंच को आसान बनाने की जरूरत है।

शुभम शर्मा, नोएडा

मध्य भारत में पानी की किल्लत

बढ़ती गर्मी के कारण पेयजल की कमी प्रशासन के लिए चुनौती बनती जा रही है। कई बड़े बांध सूख गए हैं। मौसम विभाग ने इस साल सामान्य से कम बारिश का अनुमान लगाया है। भूमिगत जलस्तर 600 फुट नीचे जा चुका है। फिर भी पानी की बोतल व पाउच बेचने वालों के यहां पानी की किल्लत नहीं है। इस साल जलसंकट को देखते हुए नई सरकार को कई कड़े कदम उठाने होंगे। सरकार सीमेंट की सड़कें बनाना बंद करे। इससे बारिश का पानी जमीन में नहीं जा पाता है। सड़क ताप को सोखती हैं जिससे तापमान और बढ़ जाता है। इसके लिए नई तकनीक विकसित करनी चाहिए जिससे पानी जमीन में चला जाए तथा तापमान भी नहीं बढ़े। घरों से निकलने वाले पानी को घर में बने गड्ढे में डाला जाए। मनरेगा के तहत पहाड़ की ढलानों पर पालियां बनाई जाए जिससे पानी को बहने से रोका जा सके।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।